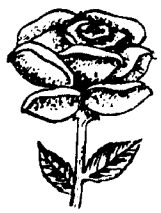

सूफी सिद्धान्त और साधना

□ डॉ. केरव प्रथम वीर, एम. ए., पी-एच. डी.
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, कला-वाणिज्य महाविद्यालय, हडपसर (पूना)

संसार के रहस्यवादी साधना सम्प्रदायों में सूफी-मत अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। अनेक पहुँचे हुए औलियों (सन्तों) और उदात्त प्रेम की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने वाले अनेक कवियों ने विश्व को इस मत के रहस्यवादी साहित्य का एक अनूठा तथा समृद्ध उपहार प्रदान किया है। राबिया (सन् ७१७), जूननून (सन् ८६०), बायजीद बिस्तानी (सन् ८७६), अबू सुलैमान, मंसूर (सन् ८५८-९२२), अबूहमीद अलगजनी (सन् १०५८), फरीदुद्दीन अत्तार (सन् ११२०), अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी आदि अनेक ऐसे ही कुछ विश्वप्रसिद्ध सूफियों के नाम हैं।

'सूफी' इस्लाम का ही एक सम्प्रदाय माना जाता है और उसका मूल आधार भी 'कुरान' को ही बताया गया है किन्तु सूफी सन्तों की साधना और आचरण, परम्परावादी इस्लामियों से नितान्त भिन्न और स्वच्छन्द है। इसलिए प्रारम्भ के अनेक सूफियों को परम्परावादी इस्लामियों ने बड़े कष्ट पहुँचाये। मंसूर जैसे अनेक सन्तों को निर्मम मृत्युदण्ड भी भोगना पड़ा।

इस्लाम का रहस्यवाद (तसव्वुफ) ही सूफी 'दर्शन' है।[1] किन्तु इसका धीरे-धीरे विकास हुआ और यह परम्परावादी इस्लाम से अलग होता चला गया। सूफी नाम के सन्दर्भ में भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। परन्तु अधिकांश विद्वानों का कहना है कि सूफी शब्द 'सफा' (पवित्र) से बना है। जो लोग पवित्र थे वे 'सूफी' कहलाये।[2] कुछ विद्वानों का मत है कि 'सूफी' शब्द 'सूफ' (ऊन) से बना है।[3] सूफी साधक ऊन का वस्त्र धारण किया करते थे, इसलिए उन्हें सूफी कहा गया। कुछ भी हो, ईसा की ९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस शब्द का अत्यधिक प्रचलन हो गया।[4] प्रारम्भ में मुसलमान साधक संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे; रहस्यवादी प्रवृत्ति का विकास बाद में हुआ। वे गरीबी में अपना जीवन व्यनीत करते और बड़े विनम्र थे। वे वैयक्तिक रूप से साधनारत थे; उनका कोई संगठित साम्प्रदायिक स्वरूप नहीं था।[5] सूफीमत का वास्तविक रूप तो बाद में विकसित हुआ।

इस विकास पर किस धर्म और दर्शन का अधिक प्रभाव रहा है, इस सन्दर्भ में विद्वानों में मतभिन्नता है। कुछ लोग ग्रीक-दर्शन, यूनानी-दर्शन और नव-अफलातूनीदर्शन के प्रभाव से इसका विकास बताते हैं। कुछ विद्वानों के मत से इस पर भारतीय दर्शन (वेदान्त और बौद्ध) का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। यहाँ इस मत-भिन्नता की छानबीन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। परन्तु इतना निश्चित है, सूफी सिद्धान्तों पर बहुत कुछ वेदान्त और बौद्ध-दर्शन का प्रभाव दिखायी देता है। यहाँ हम सूफी आस्था और साधना के प्रमुख तत्त्वों का संक्षिप्त विवेचन करना चाहते हैं। जूननून, बायजीद बिस्तानी, अबू सुलैमान, मंसूर, अबू-हमीद अलगजनी आदि ने सूफी सिद्धान्तों का विकास किया है। इनसे पूर्व के सूफी साधक सिर्फ संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे। राबिया सूफियों में सर्वप्रथम साधिका थी जिसने सभी प्रकार के कर्मकाण्ड का त्यागकर, प्रेमतत्त्व के आधार पर परमात्मा से एकत्व स्थापित किया था।

सूफी आस्था का केन्द्रबिन्दु ईश्वर है। अतः यहाँ सर्वप्रथम ईश्वर सम्बन्धी सूफियों की धारणा का आकलन कर लेना समीचीन होगा। कुरान में ईश्वर (अल्लाह) को सृष्टिकर्ता कहा गया है (Allah is the Creator of all things and He is One and Almighty.)[6] वह सर्वोत्कृष्ट है; समृद्धवान है, विजेता है और महान है; संसार के सभी पदार्थ उसी से उत्पन्न हुए हैं और उसी में चले जायेंगे (Unto Allah belongeth whatsoever is on the earth, and unto Allah all things are returned)[7], वह दण्ड में कठोर है (He is severe in punishment)[8]। कुरान में ईश्वर के सिंहासन आदि का वर्णन भी इस तरह किया गया है मानो उस पर बैठने वाला व्यक्ति अपरिमेय वैभव और समृद्धि का स्वामी है। इस तरह इस्लाम में ईश्वर सगुण जैसा दिखायी देता है।[9] वह एक ऐसा नटवर है, जिसकी इच्छा मात्र से उत्पन्न हुई सृष्टि-नटी सदैव जिसके संकेत से नृत्य करती है। वह ऐसा सूत्रधार है जो एक स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर बैठा हुआ भी समस्त ब्रह्माण्ड को पुतलियों की भाँति नचाता है और जो स्वयं संसार में न आकर देवदूतों को भेजा करता है।[१०]

सूफी भी ईश्वर को एक मानते हैं। परन्तु उनका ईश्वर संसार से अलग कहीं सातवें आसमान पर नहीं रहता। उनके मत से वही एक परमसत्ता है और सम्पूर्ण दृश्यमान जगत उसी परमसत्ता की अभिव्यक्ति है। अतः परमात्मा और जगत् में साम्य है।[११] सारा विश्व उसी का प्रदर्शन होने के कारण वह एक भी है और अनेक भी है। कुरान का यह सिद्धान्त कि 'केवल एक ही ईश्वर है', सूफियों के हाथ में आकर कुछ इस प्रकार का बन गया कि केवल ईश्वर ही वास्तविक है, और कुछ नहीं। अतः वह एक, सर्वत्र और सर्वरूप है।[१२] कुरान में ईश्वर को अत्यन्त सुन्दर कहा है—'Allah is of infinite beauty.'[१३] सूफी भी उसे अद्वितीय सौन्दर्यवान मानते हैं और सम्पूर्ण प्रकृति में उसके अपूर्व सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। सूफी को प्रकृति के मधुर रूप (जमाल) में तो उसके दर्शन होते ही हैं, उसके प्रचण्ड रूप (जलाल) में भी वह उसी का सौन्दर्य देखता है।[१४] वह परम सौन्दर्यवान होने के कारण प्रेम का आलम्बन है। सौन्दर्य से प्रेम करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। सूफियों के लिए परमात्मा प्रेम-स्वरूप है। वह प्रियतम है, प्रेम है और प्रेमी भी है। 'जामी' अपने काव्य में कहता है, "मैं वही हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ और जिससे मैं प्रेम करता हूँ मैं वही हूँ। एक ही शरीर में वास करने वाले हम दो प्राण हैं।"[१५]

सूफी परमात्मा को अपना माशूक (प्रियतम) मानते हैं। यह इस्लाम की शरीअत के विरुद्ध है। जो ईश्वर आराध्य है, उपास्य है, वह माशूक कैसे हो सकता है? जो सर्वेसर्वा है और सारा संसार जिसकी कामना मात्र का खेल है वह जीवात्मा से एकत्व कैसे स्थापित कर सकता है? इसलिए परम्परावादी इस्लामियों ने सूफियों पर बड़े अत्याचार किये। इन अत्याचारों से बचने के लिए सूफियों ने प्रतीकात्मक प्रेम का आश्रय ग्रहण किया। उनके लिए सांसारिक प्रेम (इश्के मिजाजी) परमात्म-प्रेम (इश्के हकीकी) का साधन है। वे मानवीय प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम तक पहुँचने की सीढ़ी मानते हैं। 'उन्होंने रमणियों को प्रेम का आलम्बन बनाया। यही नहीं किशोर भी प्रेम प्रतीक बनाये गये।'[१६] उनके मत से जब तक 'मनुष्य सांसारिक प्रेम को नहीं जान पाता उसके लिए आदर्श प्रेम तक पहुँचना सम्भव नहीं। सीमित और मानवीय प्रेम का विस्तार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सारे विश्व (ब्रह्माण्ड) को छा लेता है और वैसी अवस्था प्राप्त होने पर साधक सर्वत्र आत्मा-परमात्मा की प्रेम-लीला के दर्शन करने लगता है। सौन्दर्य की सीमित परिधि; अन्त में अनन्त सौन्दर्य तक पहुँच जाती है।'[१७] जामी की एक कविता में कहा गया है, "धन्य है वह संसार का मालिक जिसने प्रत्येक अणु-परमाणु को दर्पण जैसा बनाया, जिससे उसका सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है। गुलाबों से प्रकट होने वाले उस (परमात्मा) के सौन्दर्य ने बुलबुल को प्रेम से पागल बना दिया। उसी चिनगारी से शमा प्रकाशमान होती है जिस पर लुब्ध होकर परवाना अपने आपको नष्ट कर डालता है।"[१८] इस प्रकार सूफी धारणा में अल्लाह (ईश्वर) का रूप इस्लाम की धारणा की अपेक्षा व्यापक और उदात्त है।

सूफी जहाँ एक ओर सारी सृष्टि में परमात्मा के दर्शन करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे अपनी आत्मा में उससे अभेदत्व अनुभव करते हैं। इसलिए उनके मत से, परमात्मा को जानने के लिए आत्मा को जानना बहुत आवश्यक है। 'सूफी' आत्मा के दो भेद मानते हैं—(१) नफ्स, (२) रूह। नफ्स निम्नकोटि का है और सभी प्रकार की बुराइयों का स्थान है। 'रूह' सद्वृत्तियों का उद्गम स्थल है और उच्चकोटि का आत्मा माना गया है। इसके भी तीन विभाग माने जाते हैं—(१) कल्ब या दिल, (२) रूह अथवा जान, (३) सिर्र अथवा अन्तःकरण। वह सिर्र ही सबसे भीतर का हिस्सा है, जहाँ सूफी साधक परमात्मा का दर्शन किया करता है। वहीं परमात्मा का वासस्थान है।[१९] आत्मा पवित्र है लेकिन नफ्स उसे बुराइयों की ओर प्रवृत्त करता है। साधना द्वारा आत्मा की बुराइयों को दूर किया जा सकता है। इसके लिए नफ्स पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

पहले कहा गया है कि सूफियों का परम लक्ष्य है—ईश्वर से अभेद सम्बन्ध स्थापित करना। मंसूर ने इसी लक्ष्य पर पहुँच कर 'अनलहक' (मैं परमात्मा हूँ) कहा था। यह कथन इस्लाम के विरुद्ध है।[२०] सूफी-साधकों का यह विश्वास है कि 'वज्द' (भावाविष्टावस्था) के द्वारा आत्मा-परमात्मा का एकत्व स्थापित किया जा सकता है। 'इस वज्द की प्रक्रिया के सम्बन्ध में सूफियों ने फना (लय), वज्द (भाव), समाँ (संगीत), जैक (स्वाद), शर्ब (पीना), गैबत (अहम् रहित) जज्बात तथा हाल आदि शब्दों का प्रयोग किया है।'[२१] वज्द के द्वारा साधक उस स्तर पर पहुँचता है जहाँ वह परमसत्य का साक्षात्कार करता है, परमात्मा से अद्वैत अनुभव करता है। इस स्तर पर पहुँचकर स्त्री-पुरुष का कोई भी भेद नहीं रहता। वज्द के बाद बजूद (शान्तिमय स्थैर्य) की स्थिति प्राप्त होती है और फिर 'मौजूद का बजूद' (परमात्मा की सत्ता में स्थिति) वाली स्थिति में पहुँचकर सूफी साधक चरमस्थिति का अनुभव करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चरम अवस्था तक पहुँचने के लिए सूफी को एक कठोर साधना में होकर गुजरना पड़ता है। साधना का मार्गदर्शन करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। सूफी अपने गुरु (शेख, पीर, मुर्शीद) को सर्वाधिक प्रेम करता है। "गुरु और शिष्य (मुरीद) का यह सम्बन्ध, सूफीमत में भारतवर्ष से आया क्योंकि इस्लामधर्म की यह चीज नहीं है और न इस रूप में यह चीज, भारतवर्ष को छोड़कर अन्यत्र कहीं पायी जाती है।"[२२] सूफियों की धारणा है कि गुरु (मुर्शीद) में वह सामर्थ्य होती है जिसके द्वारा वह मुरीद (शिष्य) की आध्यात्मिक मार्ग की सारी कठिनाइयों से रक्षा करता है। उसकी वाणी से परमात्मा ही बोलता है क्योंकि मुर्शीद (गुरु) ने अभेदत्व स्थापित कर लिया है।

गुरु साधक को साधना की एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक पहुँचने में सहायता करता है। यहाँ तक कि परमात्मा के साथ मिलन भी उसके बिना सम्भव नहीं।[२३] मुरीद (शिष्य) अपने गुरु (मुर्शीद) का ध्यान करते-करते इतना आगे पहुँच जाता है कि वह सभी मनुष्यों तथा वस्तुओं में गुरु को ही देखता है। इस स्थिति को 'गुरु-लय' कहते हैं। गुरु अपनी दिव्यशक्ति से जान लेता है कि साधक इस साधना में कहाँ तक सफल हो सका है और कहाँ तक वह अपने को एकाकार कर पाया है? इस अवस्था में पहुँचने पर मुर्शीद (गुरु) उस साधक को अपने सम्प्रदाय के संस्थापक दिवंगत पीर की दिव्यशक्ति के अधीन कर देता है। साधक अपने गुरु की आध्यात्मिक शक्ति के सहारे उस पीर को प्रत्यक्ष करता है। इस स्थिति को 'पीर-लय' कहते हैं। अब साधक मानो उस पीर का अंग बन जाता है और उस पीर की सम्पूर्ण दिव्यशक्ति का अधिकारी बन जाता है। तीसरी अवस्था में मुर्शीद उसको पैगम्बर के निकट पहुँचा देता है और साधक सभी वस्तुओं में पैगम्बर को ही देखने लगता है। इस अवस्था को 'पैगम्बर-लय' कहते हैं। चौथी अवस्था में साधक परमात्मा तक पहुँचता है और सभी वस्तुओं में परमात्मा के दर्शन करता है। इस प्रकार से वह परमात्मा से एकत्व स्थापित करता है। इस अवस्था में पहुँचने के बाद गुरु फिर उसे प्रथमावस्था में ले आता है।[२४]

गुरु के मार्गदर्शन में सूफी सर्वप्रथम नफ्स से छुटकारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसके लिए आत्म-शुद्धि की आवश्यकता होती है। परम्परावादी इस्लाम में आत्म-शुद्धि के लिए पाँच स्तम्भों का उल्लेख किया जाता है[२५]— (१) तोहीद (एक ईश्वर पर विश्वास), (२) सलात (प्रार्थना), (३) रोजा (उपवास), (४) जकात (दान), (५) हज (काबे की यात्रा)। सूफी सिद्धान्त में एक ईश्वर के जिस रूप पर आस्था की जाती है उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। पंचकालिक नमाजों (प्रार्थनाओं) के सन्दर्भ में सूफियों की धारणा है कि ईश्वर सर्वकालिक और सर्वत्र विद्यमान है वह किसी निश्चित स्थान पर नहीं; बल्कि अणु-अणु में उसी का साकार प्रदर्शन है।[२६] उसका निवास हमारा हृदय भी है और उसी में उसे खोजा जा सकता है। सच्चा प्रेम उसका साक्षात्कार करा सकता है, फिर निश्चित कालों में ही प्रार्थना क्यों?

इस्लाम में रमजान के महीने में रोजा (उपवास) रखने का महत्व है। यह मास साल में एक बार आता है। इस मास में दिन में उपवास और हर प्रकार का संयम रखा जाता है। किन्तु रात्रि में किसी प्रकार का भी निषेध नहीं माना जाता। सूफी साधक उपवास को तो अपनाते हैं; किन्तु रमजान के महीने के बन्धन में बँधकर नहीं। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति किसी प्रकार के ऐसे बन्धन में नहीं बँधना चाहती है। वे सच्चे प्रेमी हैं और प्रेमी को भूख-प्यास का ध्यान कहाँ रहता है? प्रेम की भूख पेट की भूख को मिटा देती है। अतः उपवास तो स्वयं ही हो जाया करते हैं।[२७]

परम्परावादी इस्लामी अपनी परिस्थिति के अनुसार जकात (दान) करते हैं। लेकिन सूफी तो आत्मदान में विश्वास करते हैं। वे अपने परमप्रिय के लिए सर्वस्व समर्पण करने को तत्पर रहते हैं। वे 'मैं' (अहं) का त्याग कर 'तू' (खुदा) में ही मिल जाते हैं। इसी प्रकार 'हज' के सन्दर्भ में भी सूफियों की अलग धारणा है। जो ईश्वर सर्वत्र है उसके लिए 'मक्का' जाने की आवश्यकता क्या है? ईश्वर का पूर्ण-वैभव जर्रे-जर्रे में अथवा अपने अन्तःकरण में ही प्रदर्शित है।

इस तरह इस्लाम के इन पंच-स्तम्भों में सूफियों की परम्परागत आस्था नहीं है। परन्तु उनके अपने कुछ विशिष्ट आचरण हैं। वे दुराचरण के लिए पश्चात्ताप का मार्ग अपनाते हैं। नफ्स से छुटकारा पाने के लिए फाका (उपवास) आदि करते हैं। 'पश्चात्ताप' में राबिया प्रायः रोया करती थी।[२८] पश्चात्ताप के लिए सूफियों में जिक्र (जप) एवं ध्यान आदि का बड़ा महत्व है। जिक्र का अर्थ है परमात्मा के नाम का स्मरण करना "ला अल्लाह इल्ल अल्लाह" इसका मूल मन्त्र है। जिक्र के दो भेद बताये जाते हैं—(१) जिक्र-जली, और (२) जिक्र-खपी।

जिक्र-जली का तात्पर्य है उच्च स्वर में नामोच्चारण करना। जिक्र-खपी में मन की एकाग्रता के साथ शान्त भाव से चुपचाप नामस्मरण करना। जिक्र के सम्बन्ध में सूफियों के विभिन्न सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं का प्रचलन है। 'बहुत सारे साधक ऐसे हैं जो आँख बन्द किये हुए बिना किसी प्रकार की आवाज किये अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वास-प्रश्वास पर ध्यान लगाये हुए रहते हैं। जब श्वास बाहर आती है तो उसे लगता है जैसे वह 'ला-इल्लाह' कहता है और जब श्वास भीतर जाती है तब वह 'इल अल्लाह' कहता है। कुछ साधकों का कहना है कि जाने या अनजाने प्रत्येक आदमी अपनी साँसों के भीतर जाने और बाहर आने के साथ 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करता है।[२९]

जिक्र के लिए सूफी माला (तसबीह) का उपयोग भी करते हैं। इसके द्वारा वे परमात्मा के नाम-स्मरण की संख्याओं का अंदाज लगाते हैं। 'जिक्र-जली' की क्रियाओं के सम्बन्ध में दिल्ली के शाह वली अल्लाह ने अपनी पुस्तक "कौलुल जमील" में इस प्रकार उल्लेख किया है—"साधक सहजभाव से बैठ जाता है और जोर से 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करता है। पहले अपनी आवाज को बायें पार्श्व से खींचता है और बाद में अपने गले से। इसके बाद प्रार्थना की मुद्रा में बैठकर पहले से भी अधिक उच्च स्वर में वह 'अल्लाह' शब्द दुहराता है। इस बार दाहिने घुटने से वह प्रथमतः आवाज को खींचता है और इसके बाद अपने बायें पार्श्व से। फिर पैरों को मोड़कर और भी अधिक ऊँचे स्वर में वह 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करता है। प्रथमतः दाहिने घुटने से, इसके बाद बायें पार्श्व से उसकी आवाज इस बार आती है। इसी मुद्रा में बैठा हुआ वह और भी अधिक जोर से 'अल्लाह' शब्द कहता है और इस बार उसकी आवाज का क्रम यों रहता है—पहले बायें घुटने से, फिर दाहिने घुटने से, इसके बाद बायें पार्श्व से और अन्त में सम्मुख से। आवाज का स्वर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसके बाद साधक मक्का की दिशा में मुँह फेरकर प्रार्थना की मुद्रा में बैठ जाता है और अपनी आँखें बन्द कर लेता है। आवाज को नाभि से खींचकर बायें कन्धे की ओर ले जाता है और 'ला' शब्द का उच्चारण करता है; तब वह 'इलाह' कहता है मानो वह अपनी आवाज मस्तिष्क से खींचता है और अन्त में बायें पार्श्व से आवाज को जैसे खींचता है और पूरी शक्ति लगाकर 'इल्ला'-'ल्लाहु' कहता है।"[३०]

श्री रामपूजन तिवारी ने 'रोज' की पुस्तक 'दी दरवीशेज' (*The Dervishes* by Rose) के आधार पर रिफाइ सम्प्रदाय की जिक्र-क्रियाओं का जो विवरण दिया है उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना चाहते हैं—

"रिफाइयों के 'जिक्र' में एक के बाद एक पाँच दृश्य दीख पड़ते हैं और उसमें तीन घण्टे से भी अधिक समय लग जाता है। प्रथम दृश्य में, 'जिक्र' में शामिल होने वाले सभी दरवेश अपने शेख की वन्दना करते हैं जो वेदी के सामने बैठा हुआ रहता है। इसके बाद चार पुराने साधक उठकर शेख के निकट जाते हैं। परस्पर एक-दूसरे का आलिंगन कर उनमें से दो शेख के दाहिनी ओर और दो बायीं ओर स्थान ग्रहण करते हैं। अन्य दरवेश उनसे कुछ दूर हटकर उनके सामने अर्द्धवृत्त बनाते हुए, वहाँ बिछी हुई भेड़ की खाल पर बैठ जाते हैं। बैठने के बाद दरवेश, तकबीर और फातिहा पढ़ते हैं। इसकी समाप्ति के बाद शेख 'ला-इलाह-इल्ल अल्लाह' का उच्चारण अविराम गति से करने लगता है और अन्य उसके स्वर में स्वर मिलाकर 'अल्लाह' कहने लगते हैं और साथ ही एक-दूसरे से, दूसरी ओर झूमना शुरू कर देते हैं तथा अपने हाथों को कभी चेहरे पर, कभी छाती पर, कभी उदर पर और कभी घुटनों पर रखते जाते हैं। इसके बाद दूसरा दृश्य आरम्भ हो जाता है।

"शेख के दाहिनी ओर बैठा हुआ एक आदमी हमदी मुहम्मदी (पैगम्बर की वन्दना) का पाठ करने लगता है। अन्य 'अल्लाह' शब्द को ही दुहराते रहते हैं और आगे-पीछे झूमने लगते हैं। पन्द्रह मिनट के बाद वे उठ खड़े होते हैं और बायें से दायें और दायें से बायें हिलने लगते हैं। इसमें दाहिने पैर को स्थिर रखते हैं और बायें का ही संचालन करते हैं। अगर शरीर को दाहिनी ओर झुकाते हैं तो बायें पैर को बायीं ओर ले जायेंगे और अगर शरीर को बायीं ओर झुकाते हैं तो बायें पैर को दाहिनी ओर ले जायेंगे। इसके साथ ही 'या अल्लाह' और 'या हू' शब्द का ऊँचे स्वर से उच्चारण करते जाते हैं। उस समय कुछ आहें भरते रहते हैं, कुछ की आँखों से आँसू की धारा बहती रहती है, कई फफक-फफक कर रोते रहते हैं और कितनों के शरीर से पानी की बूंदें टपकती रहती हैं। उस समय उनकी आँखें बन्द रहती हैं, चेहरा पीला पड़ा हुआ रहता है। कुछ मिनटों के रुकने के बाद तीसरा दृश्य सामने आ जाता है।

"इसमें उनके अंग-संचालन आदि की क्रियाएँ और भी वेगवती हो जाती हैं और भी अधिक क्षिप्रता लाने के लिए उनमें से एक बीच में आकर अपने उदाहरण से अन्य सभी को और अधिक वेग लाने के लिए प्रोत्साहित करता है। थोड़ी देर ठहरने के बाद चौथा दृश्य प्रारम्भ होता है। सभी दरवेश अपने माथे की पगड़ी को उतार फेंकते हैं और एक वृत्त बनाकर खड़े हो जाते हैं और उस कमरे के चारों ओर तीव्र गति से घूमने लगते हैं। बीच-बीच में पाँव पटकते जाते हैं और सभी एक ही साथ उछल पड़ते हैं। यह नृत्य बड़े जोरों में 'या अल्लाह' और 'या हू' के निरन्तर उच्चारण के साथ चलने लगता है। अत्यधिक ऊँचे स्वर में वे चिल्लाते रहते हैं। शेष और उसकी बगल में बैठने वाले उनको और भी तीव्रता के साथ नाचने के लिए स्वयं जोरों से नाचकर प्रोत्साहन देते हैं। वे इस तरह से नाचते-नाचते ऐसी अवस्था में पहुँचते हैं जहाँ वे पागलों की नांई शेख के हाथों से आग में तपाये हुए लाल लोहे के छड़ों को बढ़-बढ़ कर लेने लगते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कभी वे उसे चाटते हैं, कभी प्यार से चूसते हैं, कभी दाँतों के बीच पकड़ लेते हैं और अन्त में उसे मुँह में लेकर ठण्डा करते हैं। जिनको ये लाल तपाये हुए छड़ नहीं मिल पाते, वे ठण्डे छड़ों को ही दीवारों पर से, जहाँ वे टँगे रहते हैं, ले लेते हैं और अपने हाथ-पाँव और शरीर में घुसेड़ते हैं। चौथे दृश्य का अन्त होते-होते दो दरवेश इन छड़ों को शेख के हाथों में दे देते हैं। जलती हुई आग में वे पहले से ही वहीं पर तपते रहते हैं।

"उस क्रिया में किसी के चेहरे पर शिकन या पीड़ा के चिन्ह नहीं दीखते। अन्त में शेख प्रत्येक के पास जाता है, उनके घाव पर मुँह से फूंकता और अपना थूक उस पर मलता है। उस पर मन्त्र का पाठ करता है और कहता है कि वे जल्दी ही आरोग्य लाभ करेंगे। कहा जाता है कि चौबीस घण्टे के बाद घाव का कोई भी चिन्ह नहीं रह जाता।"[३७]

जिक्र-जली का ही एक विकसित रूप है—'संगीत' (समाँ)। समाँ का अर्थ है तन्मयता के साथ सुनना। किन्तु सूफियों में इसका अर्थ है संगीत, गायन, आदि का ऐसा समस्वर पाठ, जिसमें एक या सबके सम्मिलित प्रभाव द्वारा भावाविष्टावस्था उत्पन्न हो जाय।[३२] इस्लाम में संगीत की विशेष प्रतिष्ठा न होते हुए भी सूफियों ने इसे अन्तर्दृष्टि खोलने का साधन माना है।[३३] इनका विश्वास है कि समाँ (संगीत) सौन्दर्य की प्रशंसा के लिए अद्वितीय साधन है। सांसारिक सौन्दर्य की प्रशंसा परम सौन्दर्य के लिए पुल का कार्य करती है। सूफी को अपने साथ प्रकृति सुन्दरी भी अपने सौन्दर्यस्रोत का गुणगान करती-सी दीख पड़ती है। 'संगीत, वाद्यादि से भावोल्लास उत्पन्न होने पर सूफी-साधक अकेले या सम्मिलित रूप से नृत्य करना शुरू कर देते हैं, जिसे 'रक्स' कहते हैं।[३४] जब कब्बाल विविध वाद्यों के साथ कीर्तन करते हैं तो एक मादकता-सी छा जाती है। अनेक को 'हाल' (तन्मयता) आ जाता है और इलहाम होने लगता है।'[३५]

"सूफी इस बात में विश्वास करते हैं कि परमात्मा ने जगत के सभी प्राणियों को अपनी-अपनी भाषा में उसका गुणानुवाद करने की शक्ति दी है। इस प्रकार से सृष्टि की जितनी ध्वनियाँ हैं वे स्तुति-वादन का रूप ले लेती हैं। अतएव परमात्मा ने जिसके अन्तर् को खोल दिया है; और आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की है वह सर्वत्र उसकी आवाज सुनता है। मुअज्जिन के लय-सुरवाले संगीत को सुनकर अथवा हवा की आवाज या चिड़ियों के सुरीले संगीत आदि को सुनकर वह भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है। सूफी कवियों ने भी बहुत जगह कहा है कि इस सृष्टि में आने के पहले; जब आत्मा, परमात्मा से अलग नहीं हुआ था और उस समय उसने जो स्वर्गीय संगीत सुना था; उसको इस संसार का संगीत जाग्रत कर देता है। संगीत को सुन वह इस संसार से परे होकर उस स्वर्गीय संगीत को सुनने लगता है और उसे पूर्वावस्था (जिसमें आत्मा परमात्मा से अलग नहीं था) प्राप्त हो जाती है।"[३६]

योग की 'कुण्डलिनी-चक्रों' से मिलता-जुलता सूफीमत में 'लतायफ' का सिद्धान्त भी प्रचलित है। श्री राम-पूजन तिवारी ने शेख अहमद के अनुसार शरीर में छः अवस्थानों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं :[३७]

(१) नफ्स—इसका स्थान नाभि के नीचे है।
(२) कल्ब—छाती के बायीं ओर अवस्थित है।
(३) रूह—छाती के दाहिनी ओर अवस्थित है।
(४) सिर्र—कल्ब और रूह के बीच में है।
(५) खफी—इसका स्थान ललाट है।
(६) अख्फा—मस्तिष्क में अवस्थित है।

इन लतीफों के रंगों तथा देवताओं की भी कल्पना की गयी है। किन्तु इन रंगों और स्थानों के बारे में मत-भिन्नता पायी जाती है। साधक जिस अवस्था को प्राप्त होता है वह उस रंग का सिरस्त्राण धारण करता है और उस रंग को देखकर उस साधक की आध्यात्मिक यात्रा की मंजिल का पता चलता है। साधारणतः रूह का रंग हरा हो जाता है। कहा जाता है कि जैसे-जैसे सालिक (यात्री) ऊपर की ओर बढ़ता जाता है वह भिन्न-भिन्न रंगों को देखता है। आखिरी मंजिल वह है जब सम्पूर्ण भाव से वर्णहीनता आ जाती है अर्थात् कोई भी रंग नहीं रह जाता। साधक उस समय फना की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसे सूफी 'आलमे हैरत' कहते हैं।

"सूफी के लिए परमात्मा के अनवरत स्मरण द्वारा इन लतीफों को जाग्रत करना आवश्यक है। 'जिक्र' आदि की विशेष क्रियाओं द्वारा सूफी एक के बाद एक लतीफे को जाग्रत करने में समर्थ होता है और अन्त में उसे परम ज्योति के दर्शन होते हैं।"[३८]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ स्थल

१. सूफीमत—साधना और साहित्य, रामपूजन तिवारी, पृ० १६६ ।
२. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, डॉ० विमलकुमार जैन, पृ० १ ।
३. सूफीमत—साधना और साहित्य, रामपूजन तिवारी, पृ० १७२ ।
४. वही, पृ० १७३ ।
५. वही, पृ० १७६ ।
६. *The Glorious Quran*, S. 13, 16.
७. *Ibid*, S. 3, 109.
८. *Ibid*, S. 3, 11.
९. सूफीमत और हिन्दी साहित्य—डॉ० जैन, पृ० ४६ ।
१०. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ४६ ।
११. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० २५६ ।
१२. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ४७ ।
१३. *The Glorious Quran*, S. 62, 4 ।
१४. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ४४ ।
१५. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३१६ ।
१६. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ७६ ।
१७. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३१८ ।
१८. वही, पृ० ३१७ ।
१९. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० २८१ ।
२०. वही, पृ० २९१ ।
२१. वही, पृ० २९२ ।
२२. वही, पृ० ३६२ ।
२३. वही, पृ० ३५५ ।
२४. वही, पृ० ३५३-५४ ।
२५. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ५५ ।
२६. वही, पृ० ५५ ।
२७. वही, पृ० ५६ ।
२८. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ६० ।
२९. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३६६ ।
३०. वही, पृ० ३६७ पर उद्धृत ।
३१. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३७१ ।
३२. वही, पृ० ३७३ ।
३३. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ६१ ।
३४. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३७५ ।
३५. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ६१ ।
३६. सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३७३ ।
३७. वही, पृ० ३७६ ।
३८ सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ३७६ ।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org